International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2019; 1(1): 61-62
Received: 02-07-2019
Accepted: 05-08-2019

डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत), सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत), सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

शास्त्रीय संगीत के तत्वों का बिहार लोकसंगीत में योगदान

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश
लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत, संगीत की दो धारायें प्रतीत होते हुये भी दोनों में ही प्रयुक्त संगीत शब्द इनके परस्पर भिन्न होने के विषय को संदेहास्पद बनाती है। यदि लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत ''संगीत'' के अंगभूत घटक है तो फिर भिन्नता कहाँ। यदि संगीत को भावाभिव्यक्ति माना जाये तों क्या भाव पृथक हो जाते है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर में हमें लोक संगीत की शास्त्रीय संगीत से भिन्न केवल सरल और सुग्राह्य रीति–रीति के दर्शन होते हैं। यद्यपि तार्किक दृष्टिकोण से यह दोनो ही परम्परायें समान है। इनकी विकास धारा में परिवर्तन होने के कारण इनके बीच बहुत बड़ी रफई दिखाई देती है।

कुटशब्द : शास्त्रीय संगीत, रीति, परम्परा, भावाभिव्यक्ति

प्रस्तावना
किसी शास्त्र का निर्माण, विषय को स्थायित्व प्रदान करने के लिये किया जाता है और संगीत शास्त्र भी इसे चिरआयु का वरदान देने के उद्देश्य से रचा गया है। जब इस शास्त्र बद्ध संगीत का गायन–वादन प्रदर्शित किया गया तब स्वर, ताल–परिधि आदि नियमानुशासन के कारण वह लोक संगीत से भिन्न प्रतीत हुआ और शास्त्राज्ञों द्वारा उच्च वर्ग का माना गया है। शनै–शनै इसका कार्यक्षेत्र प्रथक हो गया। गुणी एवं विद्वानों के बीच विकसित होने के कारण शास्त्रीय संगीत विभिन्न राजदरबारों एवं सभाओं का कंठहार बनी जबकि लोक संगीत की धारा लोक मानसकों संतृप्त करती हुई लोक प्रांगण में ही अधिष्ठित रही। लोक संगीत स्थान से संबद्ध हो गया परन्तु शास्त्रीय संगीत सभी प्रान्तों, स्थानों में विद्वानों द्वारा समान रूप से समाहत हुआ जिसके विकास को सम्पूर्ण राजाश्रय और विद्वत वर्ग का सहयोग प्राप्त हो। इसका तीव्र गति से परिवर्तित और उत्तरोत्तर विकसित होना स्वाभाविक ही है। इसी कारण शास्त्रीय संगीत में सर्वप्रथम निर्धारित जाति, ग्राम, मेल आदि परवर्ती काल में राग, सप्तक, थाट और रागांगों आदि की कल्पना से विभूषित हुये। इसके विपरीत लोक संगीत स्थानीय अभिरूचि और योग्यता से प्रेरित होने के कारण विकास और परिवर्तन की दिशा में मंथर शति से बढ़े। वास्तव में लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत को भिन्नता का प्रारम्भ यही से होता है।

'यद्यपि पृथक कार्यक्षेत्र एवं जनमानस में प्रवाहित होते रहने के कारण पर्याप्त भिन्नता होते हुये भी संगीत के मूल तत्व 'स्वरलय पदात्मकम्' का समान रूप से समावेश लोक और शास्त्रीय संगीत में दृष्टिगत होता है जो इन दोनो के एक ही उद्गम स्थल से उत्पन्न होने का संकेत देती है। शास्त्रीय संगीत में धराकों के समान ही लोकसंगीत में भी प्रत्येक प्रान्त की गायकी भिन्न प्रतीत होती है। यह भिन्नता शब्द या भाषागत नहीं वरन् निश्चित स्वर सन्निवेशों एवं उनके निश्चित लगाव के कारण आती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रत्येक प्रान्त का लोक संगीत एक भिनन घराना है जिसे किसी राजा या दरबार का न सही, लोक विश्वास, लोक संस्कारों और स्थानीय प्रकृति का आश्रय मिला। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक संगीत यदि विकास का पूर्व पक्ष है तो शास्त्रीय संगीत उत्तर पक्ष है जो कि परस्पर अन्योन्याश्रित भी है।

'लोक' संज्ञा जो वेद और वेदोत्तर कालीन सभी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, अपने आप में अनन्त विशालता समेटे हुये है। 'लोक' का अर्थ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं सन्निहित मानव समाज से लिया गया है। इसके साथ ही लोकसंगीत को मानव समाज द्वारा भावाभिव्यक्ति हेतु सृंजित गेय विद्या माना गया है। अतीत के सहस्त्र युगों के अनावरण के पश्चात् लोक संगीत की उत्पत्ति के क्षणों को किसी काल विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। लोक संगीत को अनेक विद्वानों ने परिभाषित अपने–2 ढंग से किया जिसमें आत्मानुभूति एवं उसकी अभिव्यक्ति के तत्व ही प्रधान रूप से विद्यमान हैं।

संगीत और मानव जीवन का जितना वास्तविक परिचय हमें लोक संगीत से मिलता है उतना शास्त्रीय संगीत से नहीं। लोक संगीत जीवन में इतना घुलमिल गया है कि उसे अलोक करके देखना संभव नहीं है। लोक गीतों के भी शास्त्रीय संगीत की भाँति दो अंग होते हैं कविता और धुन। इसे हम शब्द और स्वर भी कह सकते हैं। शब्द आकर जब स्वर में ढल जाते हैं तो संगीत की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि संगीत मन की गहराईयों से सहजता से उतर जाता है।

लोकजीवन का सुन्दर प्रतिबिम्ब लोक संगीत में दिखाई पड़ता है क्योंकि इसमें लोक जीवन का सीधा–सादा परिचय होता है। शास्त्रीय संगीत में वाद्य वादन का अपना अलग महत्व है। लोक संगीत में भी वादन का अपना महत्व है परन्तु गायक पक्ष और उसमें भी गीत अर्थात शब्दों की प्रधानता का प्राबल्य है। यही कारण है कि लोक संगीत में लोक गीतों का सर्वोपरि स्थान है। यदि लोक गीतों में अलग करके लोक संगीत की विवेचना करें तो न हो सकेगी।

लोकगीत संक्षिप्त, सरल, स्पष्ट, स्वाभाविक, सुन्दर, अनुभूतिमय और संगीतमय होते हैं। कदाचित ही कोई ऐसा लोकगीत हो जो संगीत अनुप्राणित न हो। उसका संगीत भी लोक जीवन का उतना ही सफल परिचायक है जितनी कि उसकी कविता। सभी लोक गीतों में वहाँ की संस्कृति की भीनी–भीनी सुगन्ध आती है और अवश्य ही उनमें कोई न कोई संस्कार छुपा होता है। इसलियें रविन्द्र नाथ टैगोर ने कहा था कि संस्कृति का सुखद संदेश ले जाने वाली कला है 'लोक संगीत'।

बिहार का लोक संगीत अपने साथ अपनी सांस्कृतिक, पारिवारिक, सामाजिक, प्राकृतिक परिवेश का इतिहास भी हैं। वहाँ मुख्य रूप से तीन भाषायें प्रचार में है मैथिली, यगही और भोजपुरी। वहाँ के लोकगीतों में जन्म के पूर्व से लेकर मरणोपरान्त संस्कारों द्वारा लोकजीवन झलकता है। लोकगीतों के पीछे राग या लोकधुनों की रूपरेखा देखने को अवश्य को मिलती है। लोकधुनों में जैसे भैरवी, खमाज, पीलू, काफी आदि रागों की लोकधुने श्रुतिमधुर होती है। हर संस्कार के अलग–2 कई गीत होते हैं जैसे पुत्र जन्म, सोहर, मुंडन, विवाह, मृत्यु आदि गीतों की रचना हुई। महावीरा गीतों में बारहमान्सा, रामनवमी, सावन, होरी, कजरी, चैती आदि गीतों को रचा गया। सामाजिक एवं ऐतिहासिक गीतों में हरदौल, आला–उदल गीत आदि आते हैं। इन गीतों में रसाभिव्यक्ति की जो धारा बहती है वो अनुपम है। यहाँ के लोकसंगीत में दो अन्य भाषाओं का वर्णन भी देखने को मिलता है, अंगिका और वज्जिका।

बिहार के लोक संगीत में विदोसिया, झूमर, रास नृत्य, रास लीला, राम लाला, नौंटकी, कठपुतली, सवांग आदि दृष्टिगोचर होते है। यहाँ के प्रमुख वाद्यों में सारंगी, वंशी, ढोलक, घुघरू, खंजरी, झांझ, मंजीरा, चंग, ढफ, एकतारा मादल, नगाड़ा, हुडुक आदि लोकवाद्य प्रयोग किये जाते हैं। यद्यपि लोकगीतो में शास्त्रीय संगीत का सम्पूर्ण विवेचन उपलब्ध नहीं होता तथापि शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाले राग स्वरूप, स्वर समूह, थाट, ताल इनमें प्राप्त होते हैं जिनको खोजना प्राचीन इतिहास के पन्ने पलट कर लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत के सह संबन्ध से ऊपर उठकर संगीतावलोकन करना है और यह अपने आप में रोचक अन्वेषणात्मक कार्य है। यहाँ के लोकगीतों में झझोटी, बिहाग, देस, शिवरंजना, बिलावल आदि रागों के भी दिग्दर्शन होते हैं। (यद्यपि लोकसंगीत में राग मिलते है, परन्तु उन्हें शास्त्रीय संगीतज्ञ ही पहचान पाता है। यहाँ के लोकसंगीत में चाचर, कहखां, दादरा, रूपक आदि तालों का प्रयोग होता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बिहार के लोक और शास्त्रीय संगीत में स्वर, लय, ताल, वाद्य, भाव, रस, शवाभाधुर्य इत्यादि सभी बातों का साघर्म्य होने से संबंध स्पष्ट परिलक्षित होता है अतः लोकसंगीत लोकजीवन मे इस प्रकार विलीन हो गया है कि इस धारा पर सदैव अपना अस्तित्व बनाये रखेगा और निरनत लोक मनोरंजन का साधन बनाये रखेगा।

संदर्भ

1. संगीत कला का इतिहास - डॉ पननालाल मदन
2. संगीत का कलापक्ष और शिक्षापक्ष - डॉ संगीता